हिन्दी भक्ति साहित्य:पूछि लीजिए ज्ञान संदर्भ स्वतंत्र चिंतन

राम आह्लाद चौधरी
अध्यक्ष,हिन्दी विभाग एवं सीनेट सदस्य,कलकत्ता विश्वविद्यालय
प्रिंसिपल इन्वेस्टिगेटर,मेजर रिसर्च प्रोजेक्ट,यूजीसी
मो० 09432051500,e-mail:ramahlad@gmail.com

हिन्दी भक्ति साहित्य पूरे हिन्दुस्तान का गर्व है। इस साहित्य ने ज्ञान-गंगा की धारा को तेज करते हुए तर्क को स्थापित करने के लिए सामाजिक बुनियाद को मजबूत किया। हिन्दी साहित्य के इतिहास से यदि एक मिनट के लिए इस साहित्य को हटा दिया जाय, तो यही लगता है कि अंधेरा छा गया है। वैसे समाज में आलोक को किसी कीमत पर स्थापित करना ही साहित्यकारों की भूमिका होती है । समाज को आलोकित करने से समाज के दरिंदे भाग जाते हैं। यही कारण है कि समाज विरोधी सारी शक्तियां समाज को रोशन नहीं होने देना चाहती हैं। विभिन्न तरह के छल-प्रपंचों के जरिये समाज को अंधकार में रखने के लिए विभिन्न तरह की कोशिशें की जाती हैं। दरअसल यह ऐसा प्रयास एक कुचेष्टा है। इस कुचेष्टा के जरिये साहित्य की मुख्यधारा को रोकने की कोशिश की जाती है।

यदि साहित्य की मुख्यधारा को बलवती किया जाय, तो समाज की सारी खामियां दूर हो जायेंगी। सत्तासीन व्यक्तियों की जनविरोधी प्रवृत्तियों के चलते ही समाज में खराब प्रवृत्तियों का जन्म होता है। सही ढंग से देखा जाय, तो स्पष्ट होगा कि यही खराब प्रवृत्तियां सामाजिक 'प्रकाश संश्लेषण' प्रक्रिया का बाई प्रोडक्ट है। इस बाई प्रोडक्ट को तर्क से ही समझा जा सकता है। तर्क के आधार पर इसका सही निदान संभव है। यदि भावुकता के आधार पर विचार किया जाय, तो

Scanned by CamScanner

इस बाई प्रोडक्ट को मानव-जीवन के उत्थान के लिए प्रयास करना ही वक्त का तकाजा है। यदि वक्त की मांग के अनुसार किसी भाषा के किसी काल के साहित्य का अध्ययन नहीं किया जाता है, तो उस काल की रचनाएं अप्रासंगिक हो जाती हैं। उस काल में वर्णित युगीन चेतना वर्तमान को रास्ता दिखाने से भटक जाती है।

साहित्य-संस्कृति-समीक्षा का प्रमुख काम यह है कि युग की सही समझ समाज में स्थापित करे। सही समझ के बिना हस्तक्षेप करना असंभव हो जाता है और हस्तक्षेप करने के बिना प्रतिवादी स्वर सामने उभर नहीं पाता। प्रतिवादी स्वर के सामने नहीं आने के चलते संकट गंभीर हो जाता है। इसके चलते सबसे बड़ा खतरा यह होता है कि विकल्प तैयार नहीं हो पाता है। विकल्प तैयार नहीं होने के कारण सामाजिक विकासधारा भीतर ही भीतर गंदली हो जाती है। समाज का समुचित उत्थान नहीं हो पाता है। सामाजिक उत्थान नहीं होने से सामाजिक उत्पादनशीलता धाराशायी हो जाती है। देखते-देखते एक तरह से ध्वंस-लीला आरंभ हो जाती है। समाज गुलाम बन जाता है और गुलामी की मानसिकता चारों तरफ छा जाती है। और जब एक मनुष्य गुलामी की मानसिकता को जी रहा है, तब भला उसे मनुष्य क्यों कहा जाय? साहित्य इसी प्रश्न का सटीक और सही उत्तर है; जो समाज जितना विकास करता है, उसका साहित्य भी उतना उन्नतमान होता है।

यदि समाज उन्नत है और साहित्य उन्नतमान का नहीं है, तो यही समझना चाहिए कि उस समाज का विकास कृत्रिम ढंग से हो रहा है, चाहे वह चीन हो या जापान। वर्तमान समय में सूचकांक बनाने का चाहे जो भी तरीका अपनाकर विकासधारा के शिखर पर पहुँचने का चाहे जितना दावा किया जाय यदि साहित्यिक धारा की उपेक्षा उस सूचकांक में की जाती है, तो यही समझना चाहिए कि सामाजिक विकासधारा का मानक ही आधा-अधूरा है। और जब किसी समाज की विकासधारा का मानक ही गलत हो, तो उस विकास के प्रभाव को कितना दूर तलक आगे बढ़ाया जा सकता है। इसका सही अंदाज लगाना असंभव है। विकास का प्रभाव साहित्यिक गतिविधियों को ध्यान में रखकर करना उचित है। यही सही मानदंड

Scanned by CamScanner

है। इस मानदंड को ध्वस्त करने का खेल आरंभ हुआ है। यही कारण है कि साहित्य में ज्ञान की चर्चा प्रासंगिक हो गयी है।

हिन्दी आलोचना चाहे भक्ति साहित्य को जिस रूप में स्थापित करे, सच तो यही है कि इस साहित्य ने ज्ञान की चर्चा की। भक्ति साहित्य की चाहे जो भी धारा हो, हर धारा में ज्ञान का निरूपण हुआ है। भक्ति साहित्य के दर्शन को समझे बिना इस सच को बड़े फलक पर उपस्थित करना मुश्किल है। हिन्दी साहित्य में भक्तिधारा का प्रस्फुटन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत है। इस जरूरत को पूरा करने के लिए विभिन्न तरह से प्रयास किया गया है। इस प्रयास को कमतर नहीं समझना चाहिए। यह भारतीय चिंतनधारा का अनोखा उभार है। यही उभार मानवीय संवेदना को विश्व स्तर पर स्थापित किये हुए है। इस उभार को देखना और उसे स्पर्श करना चाहे जितना कठिन हो, पर मानवीयता को बचाना तथा उसे पूरे विश्व में प्रसारित करना युग धर्म है तभी इस युग धर्म रूपी गाड़ी ज्ञान रूपी पटरी पर चलती है, जिसे साम्प्रदायिक सौहार्द्रता नियंत्रित करती है। आपसी मेल-मिलाप और परोपकार की भावना ऊर्जा देती है और जीवन को ऊर्जावान बनाती है। इसी पर मानवीय मूल्य विकसित होते हैं।

भक्ति साहित्य के मानवीय मूल्य बेजोड़ हैं। उन मूल्यों की समीक्षा जीवन को ऊर्जस्वित करती है। युग-युग से भक्ति साहित्य के मानवीय मूल्यों की कल-कल धारा प्रवाहित हो रही है, जो हजारों-हजार राजा-महाराजाओं के उत्थान-पतन की कहानियों का यथार्थपरक विश्लेषण प्रस्तुत कर रही है इस विश्लेषण में मणि-माणिक्य सुरक्षित हैं; बशर्ते कोई उसे पहचान सके। भक्ति साहित्य की वाणी ने उसे पहचाना तथा संत कवियों ने स्वतंत्र चिंतन पर जोर दिया। उस स्वतंत्र चिंतन का आधार तर्क था। इस तर्क से जहां एक ओर मिथक चकनाचूर होने लगे, वहीं दूसरी ओर जनता में व्याप्त भय दूर होने लगा। भक्ति साहित्य ने समाज में व्याप्त भय को दूर किया। भक्ति साहित्य की यह महत्ता है।

भक्ति साहित्य ने प्रज्ञा के प्रतीकों को बदलते हुए स्वतंत्र चिंतन को स्थापित

Scanned by CamScanner

किया। प्रेम की भावना में ज्ञान का मिश्रण भक्ति कवियों की प्रमुख विशेषता रही है। भक्ति साहित्य ने बार-बार समाज को निन्दा,घृणा, द्वेष, दंभ,घमंड,क्रोध और क्रूरता से सावधान किया है। यही कारण है कि भक्ति साहित्य के जरिये एक उच्च कोटि की परंपरा स्थापित हो पायी है। इस परंपरा को उज्जवल बनाने की चेष्टा हिन्दी आलोचना पद्धति ने की है। इस पद्धति की प्रवृत्तियों को भारतीय दर्शन के चिंतन को समझे बिना समझना मुश्किल है। इस सच को सुप्रसिद्ध मनीषी देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय ने बिल्कुल सही लिखा है - "भारतीय दर्शन में युक्तियुक्त मानी गयी पद्धति का मुख्य बिंदु विचारों के टकराव या प्रतिपाद्य के सम्मुख प्रतिपक्ष के प्रस्तुतीकरण से दार्शनिक स्थिति की ओर आगे बढ़ना है; संक्षेप में कहा जाय तो यह अंतर्विरोध से होकर आगे बढ़ना है। यह जानना आवश्यक है कि इस तरह की पद्धति किस प्रकार विकसित होती है। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारत के वैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में प्रचुर योगदान किया है।"[1] इस अवदान को मुख्य रुप से भारतीय दर्शन के अन्तर्विरोध आदर्शवाद में देखना उचित है।

विकास की प्रक्रिया अन्तर्विरोध में निहित होती है। इससे तार्किकता को बल मिलता है, तभी जाकर कोई साहित्य समाज और संस्कृति को बल पहुँचा पाता है। भारतीय मनीषियों ने इस सच को माना है कि पक्ष और प्रतिपक्ष के संघर्ष बिना कोई दर्शन पैदा नहीं हो पाता है। यही कारण हैं कि भक्ति साहित्य की विभिन्न धाराओं में बड़ी सहजता और स्वाभाविकता के साथ पक्ष और प्रतिपक्ष के संघर्ष को स्थापित किया गया है। इसकी मधुरता ने जीवन को मधुर बना दिया है। इस मधुरता के चलते जीवन बोध का उत्कर्ष विद्यमान होता है यह तभी संभव है, जब धर्म को उदात्त भूमि पर प्रस्तुत किया जाता है। इस बारे में भक्ति साहित्य के महान आलोचक कुंवर पाल सिंह ने अपने आलेख 'भक्ति आंदोलन की सार्थकता ' में बिल्कुल सही लिखा है -"... भक्तिकाल के रचनाकारों ने धर्म का संकीर्ण रूप प्रस्तुत नहीं किया है। सभी कवि धर्म और जाति की संकीर्णता को त्यागने और परस्पर प्रेम और सहयोग को दृढ़ करने पर बल देते हैं। वे एक ऐसी सर्वमान्य नैतिकता के विकास पर बल

Scanned by CamScanner

देते हैं जिसका आधार किसी प्रकार की संकीर्णता न हो, अपितु जिसकी केंद्रीय दृष्टि परस्पर सहयोग, सद्भावना, प्रेम, सहृदयता, सादगी के आधार पर विकसित हों।"[2] इन्हीं गुणों के चलते भक्ति साहित्य जन-जन तक पहुँच गया। भारतीय गांवों के लाखों-लाख कंठों में वर्तमान समय में भक्ति साहित्य की असंख्य पंक्तियां न केवल सुरक्षित हैं बल्कि घोर अंधकार को दूर करने में सफलता हासिल कर रही हैं।

भक्ति साहित्य एक तरह से विसंगतियों और विकृतियों का विरोधी है। उसका गुण इसलिए अक्षुण्ण है। इस अक्षुण्णता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए हिन्दी साहित्य के आलोचक वीरेन्द्र मोहन ने लिखा है - " भक्तिकाव्य अपने गहरे सामाजिक और स्थापत्य आदि कलाओं के सन्निदेश के कारण जन-जन की चेतना के निकट पहुँच गया। भक्ति आंदोलन का उदय ही लोक की सत्ता की स्वीकृति के साथ हुआ।"[3] लोक की सत्ता की स्वीकृति यथार्थ की भूमि पर हुई है। जब यथार्थ की भूमि मजबूत नहीं होती है, तब उसे अनुभव के आधार पर खारिज कर दिया जाता है। अनुमान के आधार पर तर्क का जन्म होता है। यदि अनुमान सही नहीं निकल पाता है, तो असुविधाएं उत्पन्न होती हैं। इससे समस्याएं उत्पन्न होती हैं। भक्ति साहित्य ने इस तरह के विभिन्न संकटों का सामना किया है।

सच्चा साहित्य तभी अपने आगमन की सूचना देता है, जब उसमें मुठभेड़ करने की क्षमता होती है। इसी क्षमता के चलते स्वंतत्र चिंतन विद्यमान रहता है। इस बारे में देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय ने लिखा है - ... " देश में ठोस दार्शनिक गतिविधियां जारी रहती हैं और संशय से उत्पन्न प्राय: जीवन्त वैचारिक संघर्ष का रूप ले लेती हैं, सिद्ध करता है कि धर्मशास्त्र-प्रणेता स्वतंत्र चिंतन का गला पूरी तरह घोंट नहीं सके।"[4] यही कारण है कि मानव चेतना का विकास लगातार होता रहा है। इस विकास को समझने के लिए न केवल जायसी या कबीर को पढ़ना यथेष्ट है बल्कि तुलसी, मीरा,सूर जैसे महत्वपूर्ण रचनाकारों की रचनाएं हमारे सामने मौजूद हैं।

Scanned by CamScanner

इन तमाम रचनाकारों ने कभी भी अपने समाज के ऊपर परिस्थितियों को बोझ नहीं बनने दिया। इस तरफ ध्यान आकर्षित करते हुए देवी प्रसाद मौर्य ने ठीक ही उल्लेख किया है - "मानव चेतना सदैव अपने अस्तित्व पर बोझ बनी परिस्थितियों को अस्वीकार कर उन्हें बदलने की चेष्टा करती है। यह अस्वीकृति सीधे सपाट शब्दों में प्रकट नहीं होती है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश के अनुसार अपनी बात को कहने के लिए कुछ अस्पष्ट प्रतीक चुन लेती है।"[5] दरअसल सामाजिक संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए सामाजिक मूल्यों को स्थापित करना पड़ता है। इन मूल्यों के बिना समाज आगे नहीं बढ़ सकता है। विद्वानों ने इसे सांस्कृतिक विकास के आईने में देखने का प्रयास किया है। ऐसी स्थिति में सवाल उठता है कि आखिर समाज में इतनी परेशानी क्यों है? इस सवाल का जवाब देते हुए देवी प्रसाद मौर्य ने लिखा है - "व्यवहार में मनुष्य अपनी आदतों को बहुत धीरे-धीरे छोड़ता है और अपनी सुरक्षा की दृष्टि से भी वह अनुदार बने रहना पसंद करता है। इसलिए हम देखते हैं कि विश्व में अभी धार्मिक कट्टरता और मध्ययुगीन अनुदारता के कारण राजनीतिक संघर्ष और छोटे-छोटे युद्ध होते रहे है।"[6] मध्ययुगीन इस अनुदारता का सही उत्तर भक्ति साहित्य है।

भक्ति साहित्य की रचना एक युगांतकारी घटना है। इस घटना पर रोशनी डालते हुए जनवादी आलोचक शिव कुमार मिश्र ने बताया है - "इस भक्ति ने बिखरते हुए समाज और अवांछित साधनाओं की ओर गुमराह होती हुई सामान्य जन की आध्यात्मिक आकांक्षाओं को आस्था का एक जीवंत टिकाऊ आधार प्रदान किया। समाज के समक्ष नए और उदात्त लक्ष्य प्रस्तुत किये और उसके दीन-दुर्बल कोटि-कोटि जनों को आत्मसम्मान के साथ अपनी खुद की जमीन पर खड़े रह सकने का साहस प्रदान किया।"[7] इस साहस के चलते ही भक्ति साहित्य की चर्चाएं बढ़ जाती हैं। भक्ति साहित्य ने इंसान और इंसानियत को स्थापित करने की लगातार रचनात्मक संघर्ष को अंजाम दिया है। इसका उदय एक सुनिश्चित ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में हुआ।

Scanned by CamScanner

जब कोई आंदोलन एक सुनिश्चित ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में शुरू होता है, तब उसका प्रभाव भी व्यापक होता है। उसके प्रभाव को नष्ट करना मुश्किल हो जाता है। उसके अन्तर्गत मानव सभ्यता को आगे बढ़ाने की क्षमता होती है। इस क्षमता के कारण ही उसका विवेचन होता है। विद्वानों ने उसका विवेचन एक सांस्कृतिक-साहित्यिक परिवेश में करने पर बल दिया है। इस संदर्भ में सतीश चंद्र के विवेचन का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा। उनके अनुसार -"भक्ति आंदोलन ने समय-समय पर लगभग पूरे देश को प्रभावित किया और उसका धार्मिक सिद्धांतों, धार्मिक अनुष्ठानों, नैतिक मूल्यों और लोकप्रिय विश्वासों पर ही नहीं, बल्कि कलाओं और संस्कृति पर भी निर्णायक प्रभाव पड़ा। बदले में इन्होंने मध्यकालीन राज्य और शासक वर्गों के नैतिक ढांचे पर अपना प्रभाव डाला। कुछ क्षेत्रों में इसके विकास की एक खास अवस्था में मुगल राज्य के केंद्रण का विरोध करने वाले तत्वों ने भक्ति आंदोलन को एक प्लेटफार्म के रूप में इस्तेमाल करने की कोशिश की। "[8] इस कोशिश में उन्हें सफलता मिली, तभी उस साम्राज्य की बुनियाद पर चोट की गयी। इस चोट के बिना भारतीय संस्कृति का सही स्वरूप हमारे सामने में नहीं आ पाता।

दक्षिण और उत्तर भारत के भक्ति आंदोलन की व्याख्या करते हुए सतीश चंद्र ने लिखा है - "...दक्षिण और उत्तर भारत में लोकप्रिय ' भक्ति ' आंदोलन अपनी-अपनी विशेष परिस्थितियों में उत्पन्न और विकसित हुए। फिर भी दोनों भारतीय संस्कृति के विस्तृत ढांचे के अंदर रहे और उन्होंने बहुत-सी दार्शनिक अवधारणाओं, नैतिक और सौन्दर्य-शास्त्रीय विचारों इत्यादि में भागीदारी की।"[9] धीरे-धीरे उत्तर भारत में राज्य की ताकत घटने लगी। उसके स्थान पर कुछ जमींदारों की स्थिति बेहतर होने लगी। इस ऊबडूब की स्थिति में भारतीय संस्कृति के सामने भयानक संकट पैदा होने लगा। इस बीच पारस्परिक प्रभाव को समझने की भी बारी आयी। इस ओर ध्यान आकर्षित करते हुए सतीश चंद्र ने लिखा है -" ... हिन्दू धर्म में भी अपनी पहचान खोए बिना दूसरों से ग्रहण करने, बाहरी तत्वों का अपने भीतर समावेश करने और उन्हें पचा जाने की अद्भुत क्षमता थी। दूसरी ओर मुसलमान पश्चिम

Scanned by CamScanner

एशिया में अपनी पहचान और अद्वितीय खोने की आशंका से भयभीत रहे हैं, इसलिए किसी भी प्रकार की समन्वय की प्रक्रिया को शक की निगाहों से देखते रहे हैं। "[10]

तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दियों में इस प्रक्रिया को विभिन्न रूपों में देखने का प्रयास किया गया। उस वक्त सूफी संतों को उच्च वर्गों के विरुद्ध जनसाधारण का प्रतिनिधि समझा जा रहा था। उन संतों की लोकप्रियता धीरे-धीरे बढ़ने लगी। उन संतों को दमन का सामना करना पड़ा। इस पर टिप्पणी करते हुए सतीश चंद्र ने कहा - "...सूफी संतों की बढ़ती हुई लोकप्रियता और सम्मान के कारण शासकों और शासक वर्गों ने उन्हें अपने राजनीतिक उद्देश्यों और निजी लाभ के लिए प्रयोग करने का प्रयत्न किया। इससे सूफी संतों और सिलसिलेदारों की स्थिति एक प्रकार से अस्पष्ट हो गयी। कुछ के राज्य के साथ निकट सम्बन्ध हो गये और कुछ ने अलहदगी का रवैया अपना लिया। तेरहवीं और चौदहवीं सदियों के दौरान, हम भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी क्षेत्रों में इसी प्रक्रिया को देखते हैं।"[11] सूफी मत को जब इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विकसित होते देखने का प्रयास किया जाता है, तब यह लगता है कि सूफीमत का विकास भारतीय धरातल पर स्वाभाविक तौर पर हुआ। भारतीय परम्परा के अनुकूल इसका विकास हुआ। भारतीय परम्परा और मनीषा के कई ऐसे तत्व हैं, जिन तत्वों से सूफी मत की सहजता को आगे बढ़ने में खासकर भारतीय धर्म साधना में फूलने-फलने का मौका मिला। साहित्य का आधार ही प्रेम है। प्रेम के तत्व की सूफी सम्प्रदाय में प्रमुखता है। भारतीय चिंतन और सूफी संतों के चिंतन में समानता दिखती रही है। इस बारे में डा० शिवचंद प्रसाद ने अपने आलेख ' सूफीमत और भारतीय संत-साधना ' में लिखा है - "सूफी एवं भारतीय संत-साधना दोनों में ही एक सामान्य प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं और वह है- प्रेम और संगीत।"[12] प्रेम और संगीत साहित्यिक उपादान की मूल विषय-वस्तु है। इसके बिना जीवन नहीं चलता और जब जीवन नहीं चल पाता है, तब भला साहित्य क्या आगे बढ़ेगा, क्योंकि साहित्य लाभ और लोभ से ऊपर होता है। साहित्य के अन्तर्गत मुनाफा नहीं होता है। मुनाफा का साधन बनाने के लिए साहित्य पर विभिन्न तरह से दबाव

Scanned by CamScanner

डाला जाता है। इस दबाव के चलते साहित्य के समक्ष चुनौतियां उत्पन्न हुई हैं, लेकिन कोई यह नहीं कह सकता है कि साहित्य झुक गया और रचनाकार बिक गया।

साहित्य और साहित्यकार लोकतत्व को लेकर चलते हैं और जहां लोकतत्व की बातें होती हैं; वहां साहित्य का विकास ही कुछ अपने तरह से होता है। 'पद्मावत' और 'चंदायन' अपने लोकतत्व के चलते प्रसिद्ध है। सूफीमत में लोकरुचि को प्रभावित करने की क्षमता होती है। 'चंदायन' इसका उदाहरण है। इस संदर्भ में डा० अमान उल्ला खां ने सूफी काव्य में लोकतत्व: 'चंदायन' और 'पद्मावत' के संदर्भ में लिखा है - "चंदायन में लोकरुचि को प्रभावित करने की क्षमता दिखाई देती है। इस लोरिक कथा में तात्कालिक संपूर्ण सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेशगत आस्थाओं एवं मान्यताओं का पूर्ण परिचय मिलता है। चंदायन में लोरिक ग्रामीण संस्कृति का प्रतीक है और चंदा नागरिक संस्कृति को अभिव्यक्ति करती है।"[13] जीवन को निकट से देखे बिना किसी का चित्र खींचना कठिन होता है। इसलिए जीवन की गुत्थियां सुलझाने के लिए जीवन के निकट पहुँचना तथा उसका सही आकलन करना आवश्यक है।

जायसी ने भारतीय जीवन को निकट से देखा था। इस बारे में डा० अमान उल्ला खां ने लिखा है - " जायसी ने भारतीय जनजीवन को निकट से देखा और परखा था, इसलिए उन्होंने भारतीय लोक जीवन के रीतिरिवाज, जीवन पद्धति, लोकमान्यताओं, लोकाचार संस्कार, परंपराओं व्रतत्योहार आदि का विषद वर्णन करते हुए पद्मावत में लोकतत्व का समावेश सफलता पूर्वक किया है। "[14] सूफीमत ने धर्मनिरपेक्षता को सही दृष्टिकोण से देखने का मार्ग प्रशस्त किया। दाराशिकोह के हवाले से यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन इतिहास और साहित्य को मानवीय स्वरूप प्रदान किया गया। दाराशिकोह ने भारतीय समाज के लिए एक मंच का गठन किया, जिस मंच पर विभिन्न धर्म के अनुयायी एकत्रित हुए। इस विशेषता की तरफ नजर खींचते हुए डा० मोहम्मद शरीफ ने लिखा है ; उनके आलेख का शीर्षक ही है - 'भारतीय अद्वैतवाद एवं दाराशिकोह का सूफीमत ' । इस आलेख में

Scanned by CamScanner

उनकी स्थापना है - "... दाराशिकोह ने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति में एक अमिट स्थान बनाया। उन्होंने धर्मनिरपेक्ष रचनाओं से भारतीय समाज में परस्पर सौहार्द की भावना को व्यक्त किया है। फारसी और संस्कृत का ज्ञानी राजकुमार दारा ने पांच सौ वर्ष पूर्व जो साहित्य भारतीय समाज को प्रदान किया, वह आज भी मध्यकालीन इतिहास की सांस्कृतिक धरोहर के रूप महत्वपूर्ण है।"[15] इस तरह के रूपों में कठोरता और कोमलता दोनों के रंग दिखते हैं।

कठोरता और कोमलता के रंग का तात्पर्य चाहे जो हो, लेकिन उसका भाव स्पर्श से है। यह स्पर्श जीवन का स्पर्श है। इस स्पर्श के बारे में तुलसी के हवाले से सियाराम तिवारी ने अपने आलेख त्रिविक्रमभट्ट और तुलसीदास में लिखा है - ". कोमलता स्पर्श का विषय है। स्पर्श में जो कोमल का , वह गुण और प्रभाव में उपयोगी, कल्याणकारी और सुंदर नहीं भी हो सकता है। पर, रामकथा की वास्तविक विशेषता तो उसका सुंदर और मंगलकारी होना है।"[16] भक्ति साहित्य की विविध धाराओं की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। उन विशेषताओं का विवेचन भी किया जाता है। उदाहरण के लिए रविदास के महत्व को रेखांकित किया जाता है।

रविदास की भावभूमि अपने ढंग की है। इस भावभूमि के संदर्भ में डा० प्रवीण कांबले ने अपने आलेख ' गुरू रविदास का भाव संसार' में लिखा है - " एकात्मक भाव की मूल चेतना संत रविदास की वाणी में भी दिखाई देती है। वही एक कर्त्ता-धरता है, जो समस्त दृश्यमान जगत के लिए केंद्रीय तत्व के रूप में निहित बताया गया है। वही तत्व, एक नूर, एक प्राण, एक आत्मा बनकर संत वाणी में समतामूलक विचार स्थापित करता है। "[17] यह विचार ज्ञान का पर्याय है। इस ज्ञान के बल पर ही समतामूलक विकास संभव है। सही अर्थों में धार्मिक तात्त्विक निष्ठायें मनुष्य की आंतरिक चेतना के परिणाम भर नहीं हैं, बल्कि सच तो यह है कि वे प्रत्येक मनुष्य की अन्तर्निहित चेतना से ही समग्र मनुष्य जाति के सामाजिक सम्बन्धों के रूप में यथार्थ जगत को प्रकट करती हैं। इस यथार्थ जगत का दर्शन तब जीवंत हो उठता है, जब विवेकात्मक ज्ञान का प्रकटीकरण होता है। इस प्रकटीकरण को विविध

Scanned by CamScanner

झरोखों से देखने की कसरत की जाती है। चाहे उसे जिस रूप में उपस्थित किया जाय, यह सच है कि उसका वास्तविक निचोड़ सामने आता है।

ज्ञान का आधार ही वास्तविकता का अध्ययन मनन है। इस अध्ययन-मनन के जरिये हस्तक्षेप करने की शक्ति बढ़ती है। इसका सम्बन्ध सामाजिक उत्पादन-शीलता पर निर्भर करता है, जो पूरे समाज को अंधविश्वास से बाहर निकालने का प्रयास करता है। इसके लिए बड़े पैमाने पर प्रचार-प्रसार करने की आवश्यकता नहीं होती है। साहित्य पर प्रचार-प्रसार का आरोप लगता रहा है। पर क्या भक्ति-साहित्य प्रचार-प्रसार है। यदि इस साहित्य ने किसी का प्रचार-प्रसार किया है , तो वह ज्ञान है। ज्ञान के आलोक में इस साहित्य ने बार-बार यह स्थापित किया है कि सारे बंधनों को तोड़कर ज्ञानात्मक धरातल पर ही मानव का विकास संभव है।

भक्ति साहित्य ने भ्रांति को तार-तार करते हुए वास्तविकता को स्थापित किया है। इस वास्तविकता को परखने के लिए शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को देखना जरूरी है। इस बारे में देवी प्रसाद मौर्य ने अपनी पुस्तक 'जीवन का यथार्थ और वर्तमान जगत ' में लिखा है -" शब्द केवल अर्थ को व्यक्त करने के साधन मात्र हैं। शब्दों और अर्थों का सम्बन्ध स्थायी नहीं होता है। सम्बन्धों के प्रकार बदल जाने पर अर्थ की व्याप्ति भी बदल जाती है।"[18] इस बदलाव पर साहित्य के चिंतक सबसे अधिक ध्यान केंद्रित करते हैं। सच तो यह है कि जीवन स्वयं एक अन्तर्विरोध है। इस अन्तर्विरोध को ध्यान में रखकर भक्ति साहित्य का विवेचन आधुनिकता की रोशनी में करना एक महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है। अर्थतत्व को समझने से इस कर्त्तव्य पालन के सिलसिले में एक कदम आगे बढ़ना है। यह कदम किस तरह आगे बढ़ता है, इस बारे में देवी प्रसाद मौर्य ने ठीक ही लिखा है -"सभ्यता और संस्कृति में मूल्य निर्धारण का काम मनीषी, महात्मा अथवा चिंतक करते हैं। वे सामान्यजन में प्रचलित धारणाओं के अनुकूल स्थापित सत्य की परिभाषा बना देते हैं और वह सत्य हजारों-हजार वर्ष तक चलता रहता है। "[19] लेकिन सत्य की अवधारणा टूटती है। उसके टूटने के पीछे कारण हो सकते हैं। लेकिन यथास्थिति को बनाने

Scanned by CamScanner

की पहल साहित्यकारों की नहीं होती है। रचनाकार इस स्थिति को बदलने की कोशिश करते हैं।

जन-सामान्य की आस्था के टूटने की तरफ ध्यान आकर्षित करते हुए देवीप्रसाद मौर्य ने लिखा है -" स्वाभाविक तौर पर जन-सामान्य की आस्थायें दरकती हैं; उनका परम्परागत संसार बिखरता है तो वे तय नहीं कर पाते हैं कि नई स्कूली शिक्षा का नया ज्ञान और उनकी श्रद्धा भक्ति तथा धार्मिक ज्ञान में से सही क्या है। "[20] भक्ति साहित्य को सिर्फ श्रद्धा की परिधि में बांधकर देखना न उचित है और न उपयोगी। इसकी प्रयोजनीयता को ध्यान में रखते हुए भक्ति साहित्य के मुख्य स्वरों का विवेचन यथेष्ट है। इस तरफ ध्यान आकर्षित करते हुए डा० मधु धवन ने ' हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास ' में लिखा है - " भक्ति आंदोलन एक व्यापक जन आंदोलन था। वह राजनीतिक स्थितियों की देन नहीं अपितु साहित्य की मूल और स्वाभाविक चिन्तनधारा का प्रवाह था । "[21]

ऐसी स्थिति में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि साहित्य समाज सापेक्ष होता है। इस सम्बन्ध में आनन्द नारायण शर्मा ने ' हिन्दी साहित्य का इतिहास-दर्शन ' में लिखा है - "...साहित्य-सृजन समाज सापेक्ष्य है और समाज किसी एक रूढ़ और ठोस इकाई का नाम नहीं है। समाज में एक साथ अनेक वर्ग और स्तर होते हैं, जिनके संस्कारों में पर्याप्त भिन्नता एवं विषमता रहा करती है। "[22] साहित्य का स्वतंत्र महत्व होता है। इस सम्बन्ध में डा० आनन्द नारायण शर्मा ने अपनी इसी पुस्तक में भी लिखा है - "... साहित्य सामाजिक-राजनीतिक जीवन का अंशत: प्रतिबिंब होकर भी अपनी स्वतंत्र सत्ता और महत्ता रखता है। अतएव उसके इतिहास की कालावधियों का सीमा-निर्धारण भी यथासाध्य साहित्यिक आधार पर ही होना चाहिए। यानी साहित्य के इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं को ही भरसक उसकी काल-सीमा के रूप में स्वीकार किया जाय।"[23] भक्ति साहित्य को काल-सीमा में बांटने का प्रयास यथेष्ट सुविधाजनक नहीं रहा।

भक्ति साहित्य के अध्ययन मनन के लिए जो भी रास्ते अपनाये गये, उन

Scanned by CamScanner

सभी रास्तों पर किसी-न-किसी रूप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की छाप रही है। इस छाप को चुनौती देना किसी आलोचक के लिए सहज नहीं रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि आचार्य शुक्ल ने विधेयवादी दृष्टिकोण के आधार पर हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा। इतिहास के सारे गुण इस लेखन में मौजूद न प्रखरता हीं है। ज्ञान के उपादानों को भी कहीं-कहीं खारिज करने वाले तत्वों को स्थान दिया गया है। लेकिन उनकी आलोचना दृष्टि की प्रखरता के सामने अन्य आलोचकों को मौन रहने के लिए विवश कर दिया गया है। उनके इतिहास लेखन की महत्ता की ओर संकेत करते हुए डा० आनन्द नारायण शर्मा ने जिक्र किया है - "उन्होंने कविवृत्त संग्रह की पुरानी परिपाटी का त्याग कर साहित्य के इतिहास की एक सुनिश्चित कल्पना और उसके आधार पर व्यक्तिमूलक के बदले प्रवृत्तिपरक इतिहास-लेखन का प्रयास किया। उन्होंने साहित्य का सम्बंध जनता की चित्तवृत्ति से जोड़ा और इस प्रकार जनमानस में होनेवाले परिवर्तन और उसके कारणों का भी निर्देश किया।"[24]

आचार्य शुक्ल की चिंतनधारा की बानगी रहस्यात्मक नहीं है। उन्होंने प्रेम और श्रद्धा के सम्मिश्रण को भक्ति की संज्ञा दी है। आचार्य शुक्ल ने साधना के तीन अवयवों की चर्चा करते हुए लिखा है - "... कर्म, ज्ञान और भक्ति कहे गए हैं, वे सब काल पाकर दोषग्रस्त हो सकते हैं। 'कर्म ' अर्थशून्य विधि-विधानों से निकम्मा हो सकता है, 'ज्ञान' रहस्य और गुह्य की भावना से पाखंडपूर्ण हो सकता है और ' भक्ति' इंद्रियोपभोग की वासना से कलुषित हो सकती है। भक्ति की निष्पति श्रद्धा और प्रेम के योग से होती है। जहां श्रद्धा या पूज्यबुद्धि का अवयव-जिसका लगाव धर्म से होता है -छोड़कर केवल प्रेम-लक्षणा भक्ति ली जायेगी वहां वह अवश्य विलासिता से ग्रस्त हो जायेगी।"[25]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की इस अवधारणा पर किसी विद्वान ने उस तरह की टिप्पणी नहीं की है, जिसका जिक्र किया जाय लेकिन उन्होंने भक्तिकाल के उदय के संदर्भ में जो विचार प्रस्तुत किया है, उस पर एक मधुर टिप्पणी करते हुए आचार्य

Scanned by CamScanner

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है। 'उस युग की साधना और तात्कालिक समाज' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रसिद्ध आलेख है, जिसकी पंक्तियां प्रस्तुत हैं: "पंद्रहवी और सोलहवीं शताब्दी भारतवर्ष की राजनीतिक हार का युग भले ही हो, वर्तमान भारत इन शताब्दियों का ही परिणाम है। इन दो सौ वर्षों को एक बार इतिहास से निकाल दीजिए, फिर देखिये हम कहां के रह जाते हैं! वर्तमान भारत जिन महापुरुषों की देन है वे - रामानंद, वल्लभ, चैतन्य, कबीर, सूरदास, दादू, मीराबाई, तुलसीदास, नरसी मेहता, तुकाराम - सब -के -सब इन्हीं दो शताब्दियों की उपज है। इन दो शताब्दियों को छोड़ दिया जाय तो हिन्दी साहित्य में तो कुछ रह ही नहीं जाता । यह एक अद्‌भुत विरोधाभास है, पर है सच।"[26]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जिस अद्‌भुत विरोधाभास को सच कहा है। यदि गहराई में उतरकर देखने की कोशिश की जाती है, तो यह एक प्रकार से ज्ञान ही है। सही मायने में भक्ति को स्थापित करने में ज्ञान की सार्थकता लक्षित होती है। इस संदर्भ में विजेंद्र स्नातक ने अपने आलेख: 'सूर-साहित्य: एक सर्वेक्षण' में लिखा है - "सूर-साहित्य में भक्ति और काव्य का जैसा अपूर्व सम्मिश्रण हुआ है वैसा विश्व-साहित्य में बहुत कम देखने में आता है। सूर ने अपनी दिव्य दृष्टि से देख लिया था कि ज्ञान की सार्थकता भक्ति में है और भक्ति को रसमय बनाने के लिए काव्य का आश्रय अनिवार्य है। भक्ति और धर्म को सार्वभौम बनाने में सूर की साहित्य-साधना का मूल्यांकन होना अभी शेष है।"[27]

इससे यह स्पष्ट होता है कि ज्ञान के बिना साहित्य की चर्चा बेकार है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ज्ञान के प्रतीक कबीर की चर्चा सबसे पहले की; यह ज्ञान गुरु के बिना असंभव है। गुरु की महिमा का वर्णन कबीर ने अपने ढंग से किया है। कबीर के शब्दों में :सो जोगी जाके सहज भाइ/अकल प्रीति की भीख खाइ/सबद अनाहद सींगी बाद, काम क्रोध विषय न बाद/ मन मुद्रा जाकें गुर के ग्यान, त्रिकुट कोट में धरत ध्यान/

Scanned by CamScanner

भक्ति साहित्य में गुरु की महिमा व्यापक है, जबकि आधुनिक साहित्य ने गुरु की सीमाओं को उजागर कर दिया है। जिस साहित्य के जरिये ज्ञान और सद्भावना की चर्चाओं को आलोक मिलता है, उस साहित्य में समाज की हर कुरीतियों को दूर करने की क्षमता होती है, तभी भक्तिकालीन साहित्य ने उद्घोष किया है कि साधु की जात पूछने की जरूरत नहीं है, उसके ज्ञान के ताप को देखना चाहिए। इस ज्ञान के बिना कबीर के स्वर में स्वर मिलाना कठिन है, जैसाकि कबीर ने कहा है -

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जानि
दस द्वारे का देहरा, तामें जोति पिछानि

Scanned by CamScanner

संदर्भ-सूची

1. चट्टोपाध्याय देवी प्रसाद, 'भारतीय दर्शन में क्या जीवंत है और क्या मृत',पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लिमिटेड, नई दिल्ली, जुलाई 1984, पृ०-3
2. सिंह प्रो० कुंवरपाल, 'भक्ति आंदोलन की सार्थकता',(सं) सक्सेना प्रदीप, 'कल हमारा है', प्रो० कुंवरपाल सिंह अभिनंदन समिति द्वारा प्रकाशित, अलीगढ़, 2008, पृ०- 447
3. मोहन वीरेन्द्र, 'भक्ति आंदोलन और लोक-संस्कृति, (सं) सक्सेना प्रदीप, 'कल हमारा है', प्रो० कुंवरपाल सिंह अभिनंदन समिति द्वारा प्रकाशित, अलीगढ़, 2008,पृ० -iv 384
4. चट्टोपाध्याय देवी प्रसाद,'भारतीय दर्शन में क्या जीवत है और क्या मृत', पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लिमिटेड, नई दिल्ली, जिलाई 1984, पृ०-188
5. मौर्य देवी प्रसाद - 'सहज समागम', रोशनाई प्रकाशन, पश्चिम बंगाल, 2008,पृ०-174
6. मौर्य देवी प्रसाद - 'सहज समागम', रोशनाई प्रकाशन, पश्चिम बंगाल, 2008,पृ०-207
7. मिश्र प्रो० शिवकुमार, 'भक्ति काव्य और लोकजीवन', लोकभारती, इलाहाबाद, 1982, पृ०-24
8. चंद्र सतीश, (अनु.) शाहिद एन ए खान, 'मध्ययुगीन भारत में इतिहास लेखन धर्म और राज्य का स्वरूप', ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली,1999, पृ०-83
9. चंद्र सतीश, (अनु.) शाहिद एन ए खान, 'मध्ययुगीन भारत में इतिहास लेखन धर्म और राज्य का स्वरूप', ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 1999, पृ०-86
10. चंद्र सतीश, (अनु.) शाहिद एन ए खान, 'मध्ययुगीन भारत में इतिहास लेखन धर्म और राज्य का स्वरूप', ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली,1999, पृ०-102

Scanned by CamScanner

11.चंद्र सतीश, (अनु.) शाहिद एन ए खान, 'मध्ययुगीन भारत में इतिहास लेखन धर्म और राज्य का स्वरूप', ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 1999, पृ०-103

12. प्रसाद डा० शिवचंद, 'सूफीमत और भारतीय संत-साधना', (सं) शंभुनाथ, अभिनव भारती 2011-12, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, पृ०-105

13. खाँ डॉ० अमानउल्ला, 'सूफीमत और भारतीय संत-साधना', (सं) शंभुनाथ, अभिनव भारती 2011-12, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, पृ०-115

14. खाँ डॉ० अमानउल्ला, 'सूफीमत और भारतीय संत-साधना', (सं) शंभुनाथ, अभिनव भारती 2011-12, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, पृ०-117

15. डॉ०मोहम्मद शरीफ,'भारतीय अद्वैतवाद एवं दाराशिकोह का सूफीमत',(सं) शंभुनाथ, अभिनव भारती 2011-12, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़,पृ०-114

16. तिवारी सियाराम, 'त्रिविक्रमभट्ट और तुलसीदास', (सं) तिवारी मुक्तेश्वर नाथ, विश्वभारती पत्रिका, पश्चिम बंगाल,जन-जून 2013,पृ०-21

17. कांबले डा० प्रवीण,'गुरु रविदास का भाव संसार',(सं)नंदवाना डा०नवीन कुमार, समवेत, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर और नई दिल्ली,जुलाई 2013,पृ०-87

18. मौर्य देवी प्रसाद, 'जीवन का यथार्थ और वर्तमान जगत', कल्पज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2009, पृ०- 374

19. मौर्य देवी प्रसाद, 'जीवन का यथार्थ और वर्तमान जगत', कल्पज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2009, पृ०- 106

20. मौर्य देवी प्रसाद, 'जीवन का यथार्थ और वर्तमान जगत', कल्पज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2009, पृ०- 107

Scanned by CamScanner

21. धवन डा० मधु,' हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ०-33
22. शर्मा डॉ० आनन्द नारायण, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास-दर्शन', अनुपम प्रकाशन, पटना, 1987, पृ०- 35-36
23. शर्मा डॉ० आनन्द नारायण,'हिन्दी साहित्य का इतिहास-दर्शन', अनुपम प्रकाशन, पटना, 1987, पृ०-43
24. शर्मा डॉ० आनन्द नारायण, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास-दर्शन' , अनुपम प्रकाशन, पटना, 1987, पृ०-198
25. शुक्ल रामचंद्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा' , काशी, संवत् 2014, पृ-60-61
26. द्विवेदी हजारी प्रसाद, 'उस युग की साधना और तात्कालिक समाज' ,हरबंस लाल शर्मा, 'सूरदास', राधाकृष्ण प्रकाशन,प्रा०लि०, दिल्ली, 1966, पृ०-25
27. स्नातक विजेन्द्र , 'सूर-साहित्य:एक सर्वेक्षण', हरबंस लाल शर्मा, सूरदास, राधाकृष्ण प्रकाशन,प्रा०लि०, दिल्ली, 1966, पृ०-63

Scanned by CamScanner